पड़ोसी देशों में छाई है राजनीतिक अस्त-व्यस्तता

मयंक शेखर

भारत के पड़ोसी देशों में राजनीतिक अस्त-व्यस्तता का माहौल है। श्रीलंका का गृहयुद्ध तो समाप्त होने का नाम नहीं ले रहा, वहाँ की अल्पमत सरकार अपने अस्तित्व के लिए लड़ रही है। बांग्लादेश में भी चुनावी बेला वाली अनिश्चय की स्थिति बनी हुई है। नेपाल में एक सरकार गई, दूसरी आई और अब उसको भी चलता करने के प्रयास शुरू हो गए हैं। माओवादियों का प्रभाव बढ़ रहा है, सो अलग। पाकिस्तान और म्यांमार में सैनिक शासन के उतार-चढ़ाव जारी हैं।

भारत में वाजपेयी सरकार के चलते रहने की मुख्य वजह यह है कि न केवल विपक्ष, बल्कि गठबंधन में शामिल सहयोगी दल भी बखूबी समझ रहे हैं कि उनके पास विकल्प नहीं हैं। किसी चुनी हुई सरकार को गिराकर जनता पर बार-बार चुनाव लादने का परिणाम सभी पार्टियों की आँखों के सामने है, इसीलिए कुल मिलाकर अनिश्चितता की स्थिति नहीं है। शिवसेना और समता पार्टी के तेवर को प्रधानमंत्री के शब्दों में 'मानसूनी बादल' कहा जा सकता है।

इसके विपरीत पास-पड़ोस के देशों में बिलकुल राजनीतिक अस्त-व्यस्तता का माहौल है। शुरुआत श्रीलंका से करते हैं, जहाँ की हालत सबसे नाजुक दौर में है। वहाँ की राष्ट्रपति चंद्रिका कुमारतुंग एक साथ राजनीतिक व संवैधानिक दोनों ही संकट में फँसी हैं। उनकी सरकार अल्पमत में आ गई है और विपक्षी यूनाइटेड नेशनल पार्टी ने एक साथ अविश्वास प्रस्ताव तथा राष्ट्रपति के खिलाफ महाभियोग चलाने की ज्यों ही तैयारी शुरू की, राष्ट्रपति ने संसद को निलंबित करके जनमत संग्रह कराने का ऐलान कर दिया। जनमत संग्रह एक ऐसे नए संविधान के लिए जनता की राय जानने के लिए कराया जा रहा है, जिसके प्रावधानों के बारे में स्वयं राष्ट्रपति ही भ्रम की स्थिति में हैं। अब वे जनमत संग्रह करने पर अड़ी हैं और एकीकृत विपक्ष उसके पहले उनकी सरकार गिराने पर आमादा है। जो संविधान राष्ट्रपति को राष्ट्रीय महत्व के किसी भी मुद्दे पर जनमत संग्रह कराने की अनुमति देता है, उसी संविधान में दो-तिहाई बहुमत से राष्ट्रपति के खिलाफ संसद में महाभियोग प्रस्ताव लाने की भी व्यवस्था है और विपक्षी नेता रानिल विक्रमसिंघे कुल २२५ में से ११५ सदस्यों के हस्ताक्षर से अविश्वास प्रस्ताव पेश कर चुके हैं। अब वे महाभियोग लाने के लिए दो-तिहाई समर्थन हासिल करने में लगे हैं। विपक्ष के दबाव में भी जनमत संग्रह का आदेश राष्ट्रपति ने वापस नहीं लिया, सिर्फ इसकी तारीख २१ अगस्त से बढ़ाकर १८ अक्टूबर कर दी है।

श्रीमती कुमारतुंग विपक्ष को तोड़ने के लिए कम्युनिस्ट जनता विमुक्ति पेरामुन को मनाने की कोशिश में हैं। तमिल पार्टियों ने उनकी बातचीत की पेशकश ठुकरा दी है। मुस्लिम कांग्रेस पहले से खुंदक खाए हुए है, जिसके समर्थन वापस लेने से श्रीमती कुमारतुंग की पीपुल्स एलायंस सरकार अल्पमत में आ गई है।

उधर बांग्लादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना वाजेद ने इस्तीफा देकर कामचलाऊ सरकार के हाथ में सत्ता सौंप दी। अवकाश प्राप्त न्यायाधीश लतीफुर्रहमान के नेतृत्व में इस सरकार ने चुनाव प्रक्रिया में सुधार लाने का काम जहाँ शुरू किया कि शेख हसीना की अवामी लीग और उनकी विरोधी बांग्लादेश नेशनलिस्ट पार्टी की अध्यक्ष बेगम खालिदा जिया दोनों ने ही आपत्ति कर दी है। यहाँ भी चुनाव सुधार को लेकर कामचलाऊ सरकार असमंजस में है।

लतीफुर्रहमान ने चुनाव आयोग के अधिकारियों में परिवर्तन किया, कुछ सरकारी अधिकारियों का तबादला किया, जिस पर इन दोनों प्रमुख पार्टियों ने बवाल खड़ा कर दिया। चुनाव प्रक्रिया का जायजा लेने अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जिमी कार्टर ढाका आए। यह पहला अवसर है जब बांग्लादेश में चुनाव का पर्यवेक्षण करने अमेरिका के कोई महत्वपूर्ण राजनयिक आए। बांग्लादेश में भी पहली बार ऐसा हुआ है जब किसी चुनी हुई सरकार ने स्वेच्छा से इस्तीफा देकर आम चुनाव का रास्ता साफ किया हो।

नेपाल में आखिरकार गिरिजाप्रसाद कोइराला को इस्तीफा देना ही पड़ा। पिछले वर्ष मार्च में कृष्णप्रसाद भट्टाराई के खिलाफ अभियान चलाकर वे प्रधानमंत्री बने थे और उसी दिन से उनका भी विरोध शुरू हो गया था। अब कोइराला की जगह शेरबहादुर देउबा ने ली है, जिनकी सरकार की भी उलटी गिनती शुरू हो गई है, क्योंकि नेपाल का मुख्य संकट है माओवादी कम्युनिस्ट, जो राजशाही को पूरी तरह समाप्त करने पर तुले हैं। इसका समाधान फिलहाल किसी पार्टी के पास नहीं है। कोइराला के इस्तीफे और देउबा की नियुक्ति के बीच दस दिनों तक सरकार बिना नेतृत्व के ही चलती रही। माओवादी कम्युनिस्टों के नेता पुष्पकमल दहल उर्फ 'प्रचंड' ने अपने अखबार 'जनादेश' में छापा है कि अगर देउबा ने भी कोइराला की नीति अपनाई तो उनका भी वही हाल कर दिया जाएगा। गिरिजाप्रसाद कोइराला नेपाली कांग्रेस के अध्यक्ष हैं, जो सत्तारूढ़ होने के साथ-साथ सबसे बड़ी पार्टी है और जब से उन्होंने इस्तीफा दिया है, देउबा को चलता करने की मुहिम छेड़ दी है। वैसे तो नेपाल के लिए सरकार का गिरना और बनना बिलकुल आई-गई बात है, मगर अभी का माहौल पहले से जरा अलग है।

पहली बार ऐसा हुआ है, जब एक ऐसे विद्रोही गुट के दबाव में सत्ता परिवर्तन हुआ है, जिसके खिलाफ कड़ा रुख अपनाने के मामले में शासन के सर्वोच्च कमांडर महाराजा भी अपने को लाचार पा रहे हैं। यही वजह है कि शेरबहादुर देउबा को अपने पुलिसकर्मियों को माओवादियों के चंगुल से छुड़ाने के लिए विद्रोहियों को छोड़ना पड़ा और बातचीत का माहौल बनाया जा रहा है, मगर मजमून क्या होगा, उसके बारे में दोनों में से कोई पक्ष कुछ भी स्पष्ट नहीं बता सकता। इधर मुख्य विपक्षी दल नेपाल कम्युनिस्ट पार्टी (एकीकृत मार्क्सवादी लेनिनवादी) के महासचिव माधव नेपाल ने सभी कम्युनिस्ट नेताओं को एकजुट करने की तैयारी शुरू कर दी है। रिपोर्ट है कि इनकी 'प्रचंड' से खूब छनती है।

आगरा शिखर बैठक की विफलता के बाद एक ओर जहाँ भारत और पाकिस्तान के बीच इस्लामाबाद शिखर बैठक के बारे में अटकलबाजियाँ चल रही हैं, वहीं पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल परवेज मुशर्रफ इस सबसे बेखबर कश्मीर और उसके आसपास अपना सैनिक शिकंजा मजबूत करने की कोशिश में जुटे हैं। बातचीत के रास्ते में सीमा पार से आतंकवाद मुख्य रोड़ा था और उसी रोड़े को बड़ा करने का अभियान जारी है।

पाँच जुलाई को तथाकथित 'आजाद काश्मीर' में पिछलग्गू पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी चुनाव हार गई और मुस्लिम कॉन्फ्रेंस चुनाव जीती, जिसे पिछली बार की तरह इस बार भी हराने का पाकिस्तान की ओर से पूरा इंतजाम था। इस पार्टी को गुलामी मंजूर नहीं है, इसलिए मुशर्रफ ने विधायकों की मर्जी के खिलाफ सिकंदर हयात को प्रधानमंत्री बना दिया। फिर मुस्लिम कॉन्फ्रेंस के प्रबल पाक विरोधी नेता सरदार अब्दुल कय्यूम के राष्ट्रपति बनने के आसार देखकर सभी मर्यादाओं को ताक पर रखकर एक अवकाश प्राप्त सैनिक जनरल मुहम्मद अनवर खाँ को राष्ट्रपति बनाने का ऐलान कर दिया। सिकंदर हयात थोड़ा उदारवादी माने जाते हैं जबकि कय्यूम प्रबल विरोधी हैं और पार्टी विधायक इनके पक्ष में थे। यह हाल कर रखा है पाकिस्तान ने अपने कब्जे वाले कश्मीर का, जो भारतीय सीमा के जम्मू-कश्मीर में आतंकवादियों की हरकत को आजादी की लड़ाई कहता है।

मुशर्रफ को अपने देश की चिंता नहीं है, लेकिन कश्मीर के मामले में वे भारत को क्या दिखाना चाहते हैं, यह खुद उन्हें पता नहीं है। इधर हाल ही में दक्षिण एशिया दौरे के क्रम में भारत के बाद पाकिस्तान पहुँचीं अमेरिका की दक्षिण एशियाई मामलों की सहायक विदेशमंत्री क्रिस्टीना रोक्का ने साफ कह दिया कि जब तक पाकिस्तान में जनतंत्र की बहाली नहीं हो जाती, प्रतिबंध जारी रहेंगे।

म्यांमार की सैनिक सरकार ने अपने विरोधी से बातचीत में कमोबेश श्रीलंका वाली नीति अपना रखी है। फर्क सिर्फ इतना है कि म्यांमार में एक ऐसे विपक्ष को उसके हक से बंदूक की बदौलत वंचित रखा जा रहा है, जिसने संसार के सामने संवैधानिक प्रक्रिया का शांतिपूर्वक सम्मान करने का सबूत दिया जबकि दूसरी ओर श्रीलंका में तमिलों से सरकार युद्ध जारी रखते हुए अधिकार देने के लिए शांति की बातचीत करती है। इस बीच अंतरराष्ट्रीय दबाव के आगे म्यांमार के सैनिक शासक ने थोड़ा उदार रुख अपनाया। वैसे तो बातचीत का माहौल पिछले वर्ष अक्टूबर से ही बनना शुरू हो गया था, जब संयुक्त राष्ट्र प्रतिनिधि इस्माईल रिजाली के बीच-बचाव से सैनिक जनरल विपक्षी नेता आन सान सू की के प्रति नरम होने को तैयार हुए। शुरू में तो बात सिर्फ नजरबंदी आदेश वापस लेने तक सीमित थी, बाद में लगा कि उन्हें और छूट दी जाएगी मगर वैसा हुआ नहीं और इसका स्पष्ट सबूत मिल गया गत १९ जुलाई को जब सू की अपने पिता की समाधि पर फूलमाला चढ़ाने नहीं आईं। सन् १९४७ में इसी तारीख को तत्कालीन शासक विन ने सू की के पिता और आठ अन्य अधिकारियों की हत्या करवाई थी। १९८९ से सू की अपने घर में नजरबंद हैं और उन्हें अपने पिता की समाधि पर फूलमाला चढ़ाने की भी इजाजत नहीं दी जाती है। इस बार सिर्फ इतनी छूट दी गई कि वे माल्यार्पण करके सीधे घर वापस आ जाएँ और कहीं न जाएँ, जिसे मानने से उन्होंने इंकार कर दिया।

इन देशों में सबसे अजीबो-गरीब स्थिति है श्रीलंका, नेपाल और बांग्लादेश की, जहाँ अनुकूल व्यवस्था कायम नहीं होने का सीधा असर भारत पर पड़ रहा है। नेपाल में भारत विरोध चरम पर है, जो माओवादियों का बढ़ता प्रभाव माना जा रहा है। माओवादियों के चीन व पाकिस्तान से संपर्क के लिए अब सबूत की जरूरत नहीं है। नेपाल से भारतीय शिक्षकों की छँटनी और मधेसिया कहलाने वाले भारतीय मूल के ३० हजार लोगों की नागरिकता समाप्त करने का फैसला स्वाभाविक रूप से भारत के लिए चिंता की बात है।